

## उदार दृष्टि : हमारे धर्म की संजीवनी

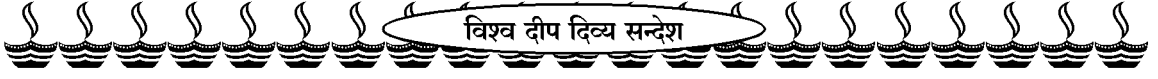
महामहोपाध्याय देवर्षि कलानाथ शास्त्री

हमारा यह धर्म विश्व के चार पाँच प्रमुख धर्मों में प्राचीनतम माना जाता है। अनुयायियों की जनसंख्या की दृष्टि से परिगणित विश्व के धर्मों में ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म या हिन्दू धर्म (जिसे सनातन धर्म कह दें, आर्यधर्म कह दें, भारतीय धर्म कह दें या और कुछ चीनी धर्म माओ और बौद्धधर्म ही प्रमुखतः गिनाए जाते हैं। इनमें सहस्राब्दियों से चला आ रहा धर्म है भारत का, जिसका मूलाधार वेद है (वेदोऽखिलो धर्ममूलम्), वह वेद (ऋग्वेद) जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अब विश्व मानव के पुस्तकालय की प्रथम पुस्तक घोषित कर दिया है। इस धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। समावेशी प्रकृति, युगानुरूप परिवर्तनों को समाहित करने की प्रवृत्ति (न कि कट्टर जड़ता या अपरिवर्तनीयता जैसी अन्य धर्मों में देखी जाती है)। यहाँ यह स्पष्ट किया जाना आवश्यक है कि हमारी मूल अवधारणा यह है कि धर्म के मूल सिद्धान्त (जिन्हें धर्म लक्षण कहा गया है) स्थायी रहेंगे, सतत् होंगे, अपरिवर्तनीय होंगे किन्तु धर्म का आचरण, इसमें साधन और व्यवहार देश और काल के अनुरूप बदलते रहेंगे।

### देश और काल

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन्हें धर्म के सिद्धान्त बताया गया है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध इन्हें धर्म के आधार (धर्म लक्षण) कहा गया है (मनुस्मृति, ६/९२) धर्म में जो हमारे सतत् रहे हैं किन्तु धर्माचरण युगानुरूप बदलता रहा है। गीता में श्रीकृष्ण ने “संभवामि युगे युगे” कहकर संकेत रूप में इसका आभास भी दिया है। महाभारत कहता है “नाऽत्यन्तिकोऽत्र धर्मोऽस्ति, धर्मोऽह्यावस्थिकः श्रुतः। (अर्थात् धर्म एवं एबसोल्यूट नहीं, रिलेटिव है)।” एक उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा।

शौच या शुद्धि धर्म का आधारभूत सिद्धान्त है किन्तु शरीर शुद्धि, हस्त प्रक्षालन कैसे किया जाए इसका आचरण बदलता रहा है। हमारे पूर्वज शौच हेतु मिट्टी से हाथ धोते थे। मुलतानी से नहाते थे क्योंकि साबुन का उन दिनों आविष्कार ही नहीं हुआ था। अब साबुन से हाथ धोना या नहाना क्या वर्जित होगा? कुछ समय पूर्व पुराण पुरुष होटलों में भी मिट्टी ले जाकर चाहे हाथ धोते रहे हैं। किन्तु युगानुरूप यह आचरण बदला है और यह धर्मानुमत भी है। देश काल के अनुरूप परिवर्तन की यह अवधारणा ही हमारे धर्म को कट्टरता, आतंकवाद आदि से बचाती रहती है। यह परिवर्तन ही हमारे अस्तित्व का



रहस्य है। हमारे धर्म में “देश कालौ संकीर्त्य” कहकर प्रत्येक धर्म कार्य के पहले देश और काल का स्मरण शायद इसी लिए अनिवार्य किया गया था।

इस धर्म का सुदीर्घ इतिहास “संस्कृति के चार अध्याय” आदि अनेक ग्रन्थों में रामधारीसिंह दिनकर आदि अनेक विद्वानों ने विस्तार से अभिलिखित भी किया है जिसमें वेदकाल के प्राचीनतम युग की मान्यताओं से लेकर, पुराणकाल की कथाओं, मूर्तिपूजा की धाराओं, मध्यकाल में पड़ने वाले अन्य धर्मों के प्रभावों को भी स्पष्ट किया गया है। अनेक विद्वानों ने युगानुरूप परिवर्तनों के प्रमाण भी दिए गए हैं जिनमें सर्वाधिक स्पष्ट प्रमाण है “कलिवर्ज्य धर्मों की अवधारणा” अर्थात् कलियुग के आते ही कुछ धर्मों के बदलने की घोषणा (जैसे पशु मारकर किए जाने वाले यज्ञ, नियोग से सन्तान उत्पन्न करना आदि पाँच कार्य)।

शोध विद्वानों की तो यह खोज भी है कि वेदों में मूर्तिपूजा नहीं थी, एकेश्वरवाद भी नहीं था (“एक सद् विभा बहुधा वदन्ति” यह एकेश्वरवाद का सूत्र नहीं, एकैकाधिदेववाद का है। Polytheism का नहीं, Henotheism का है। किसी एक प्राप्तव्य हेतु एक देव की आराधना की जाती थी। इसे एकैकाधिदेववाद कहा जाता था, बहुदेववाद नहीं। अतः (पृथ्वी, सूर्य, अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, वरुण आदि सभी वैदिक देवता प्रसिद्ध हैं।) उस समय यज्ञ प्रमुख धर्मकृत्य था (वेद उसी यज्ञ के विधायक हैं) पूजा नहीं, पूजा (या पुष्पकर्म) पुराण- काल में प्रचलित हुई। मूर्तिपूजा भी तभी से लोकप्रिय हो गई जो आज तक चल रही है।

उपनिषदों ने वेद के बाद में ब्रह्म की, परम तत्त्व की, अद्वैत की अवधारणा को जन्म दिया, ओंकार की महिमा बखानी। यह ओंकार आज हमारे धर्म का मुख्य आधार है, प्रमुख पहचान है जबकि कुछ विद्वानों का मत है कि संहिताओं में न तो ओंकार शब्द है, न प्रणव शब्द। वह उपनिषदों की देन है पर आज वह सर्वमान्य है। इसके अतिरिक्त नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में जो मन्दिर बने हुए हैं। उनकी मूर्ति पूजा ने सदियों से हमारे भोले भाले ग्रामवासियों को, महिलाओं को, संबल दिया मूर्ति पूजा अपरिहार्य हो गई है। अतः कुछ विद्वानों ने तो यह प्रयत्न भी किया है कि वेदों में भी मूर्ति पूजा के कुछ संकेत ढूँढे जाएँ।

### उद् विकास

आज राम, कृष्ण, हनुमान, भैरव, दुर्गा आदि करोड़ों भारतीयों के आराध्य हैं जो वेद में वर्णित नहीं हैं किन्तु जब से इनकी पूजा होने लगी ये हम सबके जीवनाधार बन गए। युगानुरूप यह परिवर्तन क्या हमारी संजीवनी नहीं बन गया? राम और कृष्ण को जो त्रेतायुग और द्वापर युग में हुए विष्णु का अवतार माना गया। उन्हीं के अवतार हैं मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह और वामन भी जिन्हे विद्वानों और मार्गदर्शकों ने प्रजातियों के उद् विकास का प्रतीक बताया है। जवाहर लाल नेहरू के ग्रन्थ “डिस्कवरी



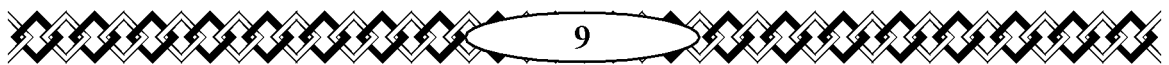
ऑफ इण्डिया'' में भी स्पष्ट किया गया है कि हजारों वर्ष पूर्व हमारी धार्मिक अवधारणा में अवतारवाद के रूप में प्रजातियों के उद् विकास का स्पष्ट विवरण है। पहले जलचर प्रकट हुए (मत्स्य), फिर उभय चर (कच्छप), फिर चौपाये (वराह) फिर दो पैर वाले इरेक्टस (नृसिंह), होमो सेपियन्स (वामन), फिर क्रमिक विकास हुआ। यह दशावतारवाद है। बाद में श्रीमद्भागवत ने चौबीस अवतार बतलाए जिनमें जिन और बुद्ध को भी शामिल कर लिया। यह युगानुरूप परिवर्तन का ही तो प्रमाण है।

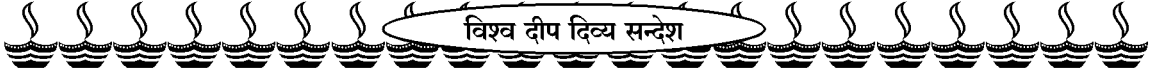
इस अवतारवाद को भी आदर दिया गया। इनकी पूजा भी होने लगी और हो रही है। युग की गति ने जब करवट ली तो कुछ रूढ़ियाँ भी पनपी। सोलह संस्कारों की अवधारणा तो अत्यन्त हितकारी थी किन्तु विवाह संस्कार में जब कन्यादान की रूढ़ि पनपी तो बालिकाओं का विवाह भी होने लगा। बाल विवाह का यह दुष्प्रभाव तो होना ही था कि बच्चियों के पति की मृत्यु के फलस्वरूप बाल विधवाएँ होने लगी। समाज द्वारा बहिष्कार के फलस्वरूप उनकी दुर्दशा पशुओं से भी बदतर हो गई। वृन्दावन जैसे तीर्थों में भिखारियों के रूप में रह रही विधवाओं का जीवन मृत्यु से बदतर होने लगा। दूसरी ओर पुरुष प्रधान समाज ने पति की मृत्यु के बाद, पत्नी के सती होने की प्रथा भी पनपाई।

इन प्रथाओं को समाप्त करने के लिए राजा राम मोहन राय और ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुष आगे आए। सती प्रथा समाप्त हुई। आज तो विधि द्वारा वह प्रतिबद्ध भी है। विधवा विवाह को भी अनुमति मिली। अनेक रूढ़ियों को समाप्त करने तथा वेदविहित धर्म की पुनः स्थापना के घण्टाघोष के साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना की जिसने मूर्तिपूजा का स्पष्ट विरोध किया, अवतारवाद का खंडन किया, एकेश्वरवाद की महिमा बतलाई (उस एकेश्वरवाद की जो ईसाईयत और इस्लाम जैसे विश्व प्रसिद्ध धर्मों का मूलाधार था) इसका भी आदर हुआ। यद्यपि सनातन धर्म के कुछ नेताओं ने आर्यसमाज का इस आधार पर विरोध किया कि मन्दिरों और मूर्तिपूजा जैसी सदियों से चली परम्पराओं को तोड़ना उचित नहीं है किन्तु आर्यसमाज के कारण बाल विवाह पर जो रोक लगी, बाल विधवाओं के पुनर्विवाह को जो मान्यता मिली, नारी शिक्षा को जो प्रोत्साहन मिला, वह समाज के लिए कितना हितकारी सिद्ध हुआ, यह स्पष्ट है। आर्य समाज तो महिलाओं के उपनयन (यज्ञोपवीत) का भी पक्षधर है, महिलाओं को वेद पढ़ाने का भी, जिसका विरोध सनातनियों ने किया था किन्तु युग ने स्पष्ट स्वीकार किया कि महिलाएँ भी वेद पढ़ सकती हैं। आज अनेक विदुषियाँ भारत का गौरव बढ़ा रही हैं। मूर्तिपूजा तो चलती रही और चलती रहेगी किन्तु उसके कारण पनप रही अवांछित रूढ़ियाँ युग की करवटों के साथ स्वतः समाप्त हो जाएँगी यह स्पष्ट है। आज हमारा धर्म वेदों को तो पूज्य मानता ही है, बाद में आई गीता को और भागवत् को भी उतना ही सम्मान देता है।

### समावेशी दृष्टि

सनातन धर्म की यही पहचान कि वह धर्म के सिद्धान्तों की अटलता का तो पक्षपाती है किन्तु





धर्म के आचरण में देश और काल के अनुरूप परिवर्तन को सदा मान्यता देता रहा है, उसकी सनातनता का रहस्य है। यह युगानुरूप परिवर्तन ही सनातन धर्म के सातत्य की संजीवनी है। तभी तो हमारे यहाँ मतभेदों को सदा मान्यता दी जाती रही है। कौन नहीं जानता कि हमारी दर्शन शाखाओं में चार्वाक, जैन, बौद्ध, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त इन सभी को पूरी तन्मयता से पढ़ाया जाता है, सम्मान दिया जाता है, चार्वाक, जैन और बौद्ध तो नास्तिक दर्शन हैं जो ईश्वर को नहीं मानते किन्तु आस्तिक दर्शनों में भी सांख्य, वैशेषिक और मीमांसा 'ईश्वर' को नहीं मानते, केवल न्याय, योग और वेदान्त उसे मानते हैं किन्तु सभी का मत समझा-समझाया जाता है, सबको समान आदर दिया जाता है।

यह सामरस्य और सामंजस्य भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान है और धर्म की भी। यहाँ मत-मतान्तर अवश्य प्रकट होते हैं, किन्तु उनका समुचित समावेश शीघ्र ही कर लिया जाता है। जैसा पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इन्द्र वरुण आदि वैदिक देवता आज भी पूजे जाते हैं। राम, कृष्ण, शिव आदि भी। मध्यकाल में शैवों और वैष्णवों में तथा शाक्तों और वैष्णवों में भी मतभेद पनपे। उनका तुरन्त ही समाधान किया गया जिससे द्वेष, हिंसा आदि न फैले। "दुर्गासप्तशती" में शक्ति को विष्णुमाया बताया गया, समस्त देवों की संमिलित शक्ति का पुंज बताया गया तब से मतभेद समाप्त हो गए। यह दुर्गासप्तशती आज शक्तिपूजकों का कंठहार है। रामभक्तों और शिवभक्तों में तनाव पनपा तो सन्त तुलसीदास ने रामचरितमानस में शिव को परम रामभक्त चित्रित कर और राम को शिवभक्त चित्रित कर, राम के द्वारा रामेश्वरम् की स्थापना का वर्णन कर दोनों में समरसता स्थापित कर दी। रामचरितमानस आज भारत का सर्वोत्कृष्ट धर्मग्रन्थ बना हुआ है, उसे ही "रामायण" कहा जाता है। तब से शैवों और वैष्णवों में कभी संघर्ष नहीं हुआ। कोई आतंकवाद, कोई द्वेष इस धर्म में न होने का यह रहस्य मननीय है कि इसमें परिवर्तन को मान्यता दी गई है। सामरस्य, समावेश और सामंजस्य के प्रयास युग-युग में होते रहे हैं। यह एकता में अनेकता हमारी शक्ति है।

प्रधान संपादक, 'भारती' संस्कृत मासिक पत्रिका, सदस्य, संस्कृत आयोग (भारत सरकार)  
पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान संस्कृत अकादमी तथा आधुनिक संस्कृत पीठ, ज.रा. राजस्थानसंस्कृत  
विश्वविद्यालय, पूर्व निदेशक संस्कृत शिक्षा एवं भाषाविभाग, राजस्थान सरकार  
सी/8 पृथ्वीराज रोड़, सी स्कीम, जयपुर।

